५ आचार्य-परम्परा

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि धरसेनाचार्य और उनसे सिध्दान्त सीखकर ग्रंथरचना करनेवाले पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य कब हुए ? प्रस्तुत ग्रंथ में इस सम्बन्ध की कुछ सूचना महावीर स्वामीसे लगाकर लोहाचार्य तक की परम्परासे मिलती है। वह परम्परा इस प्रकार है,महावीर भगवान्के पश्चात् क्रमश: गौतम, लोहार्य और जम्बूस्वामी समस्त श्रुत के ज्ञायक और अन्तमें केवलज्ञानी हुए। उनके पश्चात क्रमश: विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये पांच श्रुतकेवली हुए। उनके पश्चात विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय,नाग, सिध्दार्थ धृतिसेन, विजय, बुध्दिल, गंगदेव और धर्मसेन, ये ग्यारह एकादश अंग और परगामी पूर्ण-ज्ञानी हुए। तत्पश्चात् नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंस, ये पांच एकादश अंगोंके धारक हुए, और इनके पश्चात् सुभद्र, यशोभद्र , यशोवाहु और लोहार्य, ये चार आचार्य एक आचारंग के धारक और शेष श्रुतके एकदेश ज्ञाता हुए। इसके पश्चात् समस्त अंगों और पूर्वोंका एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परासे आकर धरसेनाचार्यको प्राप्त हुआ (६५ - ६६) यह परम्परा इस प्रकार है--

महावीर की शिष्य - परम्परा

१ गौतम			१५ धृतिसेन	
२ लोहार्य	३ केवल		१६ विजय	
३ जम्बू			१७ बुध्दिल	
			१८ गंगदेव	
४ विष्णु			१९ धर्मसेन	
५ नन्दिमित्र	५	श्रुतकेवली		
६ अपराजित			२० नक्षत्र	
७ गोवर्धन			२१ जयपाल	५
८ भद्रबाहु			२२ पाण्डु	एकादशांगधारी

			२३ ध्रुवसेन	
९ विशाखाचार्य			२४ कंस	
१० प्रोष्ठिल				
११ क्षत्रिय	११	दशपूर्वी	२५ सुभद्र	
१२ जय			२६ यशोभद्र	४ आचारांगधारी
१३ नाग			२७ यशोबाहु	
१४ सिध्दार्थ			२८ लोहार्य	

ठीक यही परम्परा धवलामें आगे पुन: वेदनाखंडके आदिमें मिलती है। इन दोनों स्थानोंपर तथा बेल्गोलाके शिलालेख नं. १ में नं. २ के आचार्य का नाम लोहार्य ही पाया जाता है, किन्तु हरिवंशपुराण, श्रुतावतार व ब्रह्म हेमकृत श्रुतस्कंध व शिलालेख नं. १०५ (२५४) में उस स्थान पर नाम सुधर्मका नाम मिलता है। यही नहीं, स्वयं धवलाकारव्दारा ही रची हुई 'जयधवला' में भी उस स्थानपर लोहार्य नहीं सुधर्मका नाम है। इस उलझनको सुलझानेवाला उल्लेख 'जंबूदीवपण्णत्ति' में पाया जाता है। वहां यह स्पष्ट कहा गया है कि लोहार्यका ही दूसरा नाम सुधर्म था। यथा --

' तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण ।
गणधर-सुधम्मणा खलु जंबूणामस्स णिद्दिट्ठं ।। १० ।।
(जै. सा. सं. १ पृ. १४९)

नं. ४ पर विष्णुके स्थानमें भी नामभेद पाया जाता है। जंबूदीवपण्णत्ति, आदिपुराण व श्रुतस्कंधमें उस स्थानपर 'नन्दी' या नन्दीमुनि नाम मिलता है। यह भी लोहार्य और सुधर्मके समान एक ही आचार्यके दो नाम प्रतीत होते हैं। इस भेदका कारण यह प्रतीत होता है कि इन आचार्यका

पूरा नाम विष्णूनन्दि होगा और वे ही एक स्थानपर संक्षेपसे विष्णु और दूसरे स्थानपर नन्दि नामसे निर्दिष्ट किये गये हैं। यही बात आगे नं. १८ के गंगदेवके विषयमें पाई जाती है।

नं. ५ और ६ के आचार्योका शिलालेख नं. १०५ में विपरीत क्रमसे उल्लेख किया गया है, अर्थात् वहां अपराजितका नाम पहिले और नंदिमित्र का पश्चात् किया गया है। संभवत: यह छंद-निर्वाहमात्रके लिये है कोई भिन्न मान्यताका द्योतक नहीं।

आगेके अनेक आचार्योंके नाम भी शिलालेख नं. १०५ में भिन्न क्रमसे दिये गये हैं जिसका कारण भी छंदरचंना प्रतीत होता है और इसी कारण संभवत: धर्मसेनका नाम यहां भिन्न क्रमसे सुधर्म दिया गया है।

उसी प्रकार नं. ११ और १२ का उल्लेख श्रुतस्कंधमें विपरीत है, अर्थात् जयका नाम पहले और क्षत्रियका नाम पश्चात् दिया गया है। क्षत्रियके स्थानमें शिलालेख नं. १ में कृत्तिकार्य नाम है जो अनुमानत: प्राकृत पाठ 'क्खत्तियारिय' का भ्रान्त संस्कृत रुप प्रतीत होता है। नंदिसंघकी प्राकृत पट्टावलीमें नं. १७ के बुध्दिलके स्थानपर वुध्दिलिंग व नं. १८ के गंगवेदके स्थानपर केवल ' देव ' नाम है।

नं. २१ के जयपालके स्थानपर जयधवलामें 'जसफल' तथा हरिवंशपुराणमें यश:पाल नाम दिये हैं।

नं. २३ के धुवसेनके स्थान पर श्रुतावतार व शिलालेख नं. १०५ में द्रुमसेन तथा श्रुतस्कंधमें 'धुतसेन'नाम है।

नं. २६ के यशोभद्रके स्थान पर श्रुतावतारमें 'अभयभद्र' नाम है।

नं. २७ के यशोबाहुके स्थानपर जयधवलामें जहबाहु, श्रुतावतारमें जयबाहु व नंदिसंघ प्राकृत पट्टावलीमें व आदिपुराणमें भद्रबाहु नाम है। संभवत: ये ही नंदिसंघकी संस्कृत पट्टावलीके भद्रबाहु व्दितीय हैं।

इन सब नाम-भेदोंका मूल कारण प्राकृत नामों परसे भ्रमवश संस्कृत रुप बनाना प्रतीत होता है। कहीं कहीं लिपिमें भ्रम होनेसे भी पाठ-भेद पड जाना संभव है।

धरसेनाचार्य के समयका विचार

उक्त आचार्य-परंपराका प्रस्तुत खण्डमें समय नहीं दिया गया है। किंतु धवलाके वेदनाखण्डके आदिमें, जयधवलामें व इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें गौतम स्वामीसे लगाकर लोहार्य तकका समय समयका विचार मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि महावीर निर्वाणके पश्चात् क्रमश: ६२ वर्षमें तीन केवली, १०० वर्षमें पांच श्रुतकेवली, १८३ वर्षमें ग्यारह दशपूर्वी, २२० वर्षमें पांच एकादशांगधारी और ११८ वर्षमें चार एकांगधारी आचार्य हुए। इस प्रकार महावीर निर्वाणसे लोहाचार्य (वि.) तक ६२ + १०० + १८३ + २२० + ११८ = ६८३ वर्ष व्यतीत हुए और इसके पश्चात् किसी समय धरसेनाचार्य हुए।

अब प्रश्न यह है कि लोहाचार्यसे कितने समय पश्चात् धरसेनाचार्य हुए। प्रस्तुत ग्रन्थमें तो इसके संबन्धमें इतना ही कहा गया है कि इसके पश्चात् की आचार्य परम्परामें धरसेनाचार्य हुए (पृष्ठ ६७)। अन्यत्र जहां यह आचार्य परम्परा पाई जाती है वहां सर्वत्र वह परम्परा लोहाचार्य पर ही समाप्त हो जाती है। इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें प्रस्तुत ग्रंथोंके निर्माणका वृत्तान्त विस्तारसे दिया है। किंतु लोहार्यके पश्चात् आचार्योंका क्रम स्पष्टत: सूचित नहीं किया। प्रस्तुत, जैसा ऊपर बता आये हैं, उन्होंने कहा है कि इन आचार्योंकी गुरु-परंपराका कोई निश्चित नहीं, क्योकि, उसके कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं। उन्होंने लोहार्यके पश्चात् चार और आचार्योंके नाम गिनाये हैं, विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हद्दत और उन्हें आरातीय तथा अंगों और पूर्वोके एकदेश ज्ञाता कहा है।

लोहार्यके पश्चात् चार आरातीय यतियोंका जिस प्रकार इन्द्रनन्दिने एकसाथ उल्लेख किया है उससे जान पडता है कि संभवत: वे सब एक ही कालमें हुए थे। इसीसे श्रीयुक्त पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारने उन चारोंका एकत्र समय २० वर्ष अनुमान किया है। उनके पश्चात् के अर्हब्दलि आदि आचार्योंका समय मुख्तारजी क्रमश: १० वर्ष अनुमान करते हैं। (समन्तभद्र पृ. १६१) इसकेअनुसार धरसेनाचार्यका समय वीरनिर्वाणसे ६८३ + २० + १० + १० = ७२३ वर्ष पश्चात् आता है।

किन्तु नन्दिसंघकी प्राकृत पट्टावली इसका समर्थन नहीं करती। यथार्थत: यह पट्टावली अन्य सब परम्पराओं और पट्टावलियोंसे इतनी विलक्षण है और उन विलक्षणताओंका प्रस्तुत आचार्योंके काल-निर्णयसे इतना घनिष्ठ संबन्ध है कि उसका पूरा परिचय यहां देना आवश्यक प्रतीत होता है और चूंकि यह पट्टावली, जहां तक हमें ज्ञात है, केवल जैनसिध्दान्तभास्कर, भाग १, किरण ४, सन् १९१३ में छपी थी जो अब अप्राप्य है, अत: उसे हम यहां पूरी विना संशोधनका प्रयत्न किये उदधृत करते हैं --

नन्दि-आम्नायकी पट्टावली

श्रीत्रैलोक्याधिपं नत्वा स्मृत्वा सद्गुरुभारतीम् ।
वक्ष्ये पट्टावलीं रम्यां मूलसंघगणाधिपाम् ।। १ ।।
श्रीमूलसंघप्रवरे नन्द्याम्नाये मनोहरे ।
बलात्कारगणोत्तंसे गच्छे सारस्वतीयके ।। २ ।।
कुन्दकुन्दान्वये श्रेष्ठमुत्पन्नं श्रीगणाधिपम् ।
तमेवात्र प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सज्जना जना: ।। ३ ।।

पट्टावली

अंतीम-जिण-णिव्वाणे केवलणाणी य गोयम-मुणिंदो ।
वारह-वासे य गये सुधम्म-सामी य संजादो ।। १।।
तह बारह-वासे पुण संजादो जम्बु-सामि मुणिणाहो ।
अठतीस-वास रहियो केवलणाणी य उक्किट्ठो ।। २ ।।
वासट्ठि-केवल-वासे तिण्हि मुणी गोयम सुधम्म जंबू य ।
बारह बारह दो जण तिय दुगहीणं च चालीसं ।। ३।।
सुयकेवलि पंच जणा बासट्ठि-वासे गये सुसंजादा ।
पढमं चउदह-वासं विण्हुकुमारं मुणेयव्वं ।। ४।।
नंदिमित्त वास सोलह तिय अपराजिय वास बावीसं ।
इग-हिण-वीस वासं गोवध्दण भद्दबाहु गुणतीसं ।। ५।।
सद सुयकेवलणाणी पंच जणा विण्हु नंदिमित्तो य ।

अपराजिय गोवध्दण तह भद्दबाहु य संजादा ।। ६।।

सद-वासट्ठि सुवासे गए सु-उप्पण्ण दह सुपुव्वहरा ।

सद-तिरासि वासाणि य एगादह मुणिवरा जादा ।। ७।।

आयरिय विसाख पोट्ठल खत्तिय जयसेण नागसेण मुणी ।

सिध्दत्थ धित्ति विजयं बुहिलिंग देव धमसेणं ।। ८ ।।

दह उगणीस य सत्तर इकवीस अट्ठारह सत्तर ।।

अट्ठारह तेरह वीस चउदह चोदय(सोडस) कमेणेयं ।। ९।।

अंतिम जिण-णिव्वाणे तियसय-पण-चालवास जादेसु ।

एगादहंगधारिय पंच जणा मुणिवरा जादा ।। १०।।

नक्खत्तो जयपालग पंडव धुवसेन कंस आयरिया ।

अठारह वीस-वासं गुणचालं चोद बत्तीसं ।। ११।।

सद तेवीस वासे एगादह अंगधरा जादा ।

वासं सत्ताणवदिय दसंग नव अंग अट्ठधरा ।। १२।।

सुभद्दं च जसोभद्दं भद्दबाहु कमेण च ।

लोहाचय्य मुणीसं च कहियं च जिणागमे ।। १३।।

छह अट्ठारह वासे तेवीस वावण(पणास) वास मुणिणाहं ।

दस णव अट्ठंगधरा वास दुसदवीस सधेसु ।। १४।।

पंचसये पणसठे अंतिम-जिण-समय-जादेसु ।

उप्पणा पंच जणा इयंगधारी मुणेयव्वा ।। १५।।

अहिवल्लि माघनंदि य धरसेणं पुप्फयंत भूदबली ।

अडवीसं इगवीस उगणीसं तीस वीस वास पुणो ।। १६।।

इगसय-अठार-वासे इयंगधारी य मुणिवरा जादा ।

छसय-तिरासिय-वासे णिव्वाणा अंगद्दित्ति कहिय जिणे ।। १७।।

सत्तरि-चउ-सद-युतो तिणकाला विक्कमो हवइ जम्मो ।

अठ-वरस बाललीला सोडस-वासेहि भम्मिए देसे ।। १८।।

पणरस-वासे रज्जं कुणंति मिच्छोवदेससंयुत्तो ।
चालीस-वरस जिणवर-धम्मं पालीय सुरपयं लहियं ।। १९।।

प्राकृत पट्टावलीके अनुसार वीर निर्वाणके पश्चात् की कालगणना इसप्रकार आती है-

वीर निर्वाणके पश्चात्

१	गौतम	केवली	१२	९	विशाखाचार्य	दशपूर्वधारी	१०
२	सुधर्म	केवली	१२	१०	प्रोष्ठिल	दशपूर्वधारी	१९
३	जम्बूस्वामी	केवली	३८	११	क्षत्रिय	दशपूर्वधारी	१७
			६२	१२	जयसेन	दशपूर्वधारी	२१
				१३	नागसेन	दशपूर्वधारी	१८
४	विष्णु	श्रुतकेवली	१४	१४	सिध्दार्थ	दशपूर्वधारी	१७
५	नन्दिमित्र	श्रुतकेवली	१६	१५	धृतिषेण	दशपूर्वधारी	१८
६	अपराजित	श्रुतकेवली	२२	१६	विजय	दशपूर्वधारी	१३
७	गोवर्धन	श्रुतकेवली	१९	१७	बुध्दिलिंग	दशपूर्वधारी	२०
८	भद्रबाहु	श्रुतकेवली	२९	१८	देव	दशपूर्वधारी	१४
			१००	१९	धर्मसेन	दशपूर्वधारी	१४ (१६)
							१८१(१८३)

२०	नक्षत्र	ग्यारह अंगधारी	१८	२८	लोहाचार्य	दश नव व आठ अंगधारी	५२(५०)
							९९(९७)
२१	जयपाल	" अंगधारी	२०	२९	अर्हब्दलि	एक अंगधारी	२८
				३०	माघनन्दि	एक अंगधारी	२१
				३१	धरसेन	एक अंगधारी	१९
२२	पांडव	ग्यारह अंगधारी	३९	३२	पुष्पदन्त	एक अंगधारी	३०

२३	ध्रुवसेन	ग्यारह अंगधारी	१४	३३	भूतबलि	एक अंगधारी	२०
२४	कंस	ग्यारह अंगधारी	३२				११८
			१२३				
						कुलजोड	६८३
२५	सुभद्र	दश नव व आठ अंगधारी	६				
२६	यशोभद्र	दश नव व आठ अंगधारी	१८				
२७	भ्रद्रबाहु	दश नव व आठ अंगधारी	२३				

इस पट्टावलीमें प्रत्येक आचार्यका समय अलग अलग निर्दिष्ट किया गया है, जो अन्यत्र नहीं पाया जाता, और समष्टिरुपसे भी वर्ष संख्यायें दी गई हैं। प्रथम तीन केवलियों, पांच श्रुतकेवलियों और दशपूर्वियोंका समय क्रमश: वही ६२, १००, और १८३ वर्ष बतलाया गया है और इसका योग ३४५ वर्ष कहा है । किन्तु दशपूर्वधारी एक एक आचार्यका जो काल दिया है उसका योग १८१ वर्ष आता है। अतएव स्पष्टत: कहीं दो वर्ष की भूल ज्ञात होती है, क्योंकि, नहीं तो यहां तकका योग ३४५ वर्ष नही आसकता। इसके आगे जिन पांच एकादशांगधारियोंका समय अन्यत्र २२० वर्ष बतलाया गया है उनका समय यहां १२३ वर्ष दिया है। इनके पश्चात् आगेके जिन चार आचार्योको अन्यत्र एकांगधारी कह कर श्रुतज्ञानकी परंपरा पूरी कर दी गई है उन्हें यहां क्रमश: दश, नव और आठ अंगके धारक कहा है, पर यह स्पष्ट नहीं किया गया कि कोन कितने अंगोंका ज्ञाता था। इससे दश अंगोंका अचानक लोप नहीं पाया जाता, जैसा कि अन्यत्र। इनका समय ११८ वर्ष के स्थानपर ९७ वर्ष बतलाया गया है। पर आचायोंका समय जोडनेसे ९९ आता है अत: दो वर्ष की यहां भी भूल है। तथा उनसे आगे पांच और आचार्योंके नाम गिनाये गये हैं जो एकांगधारी कहे गयें हैं। उनके नाम अहिवल्लि (अर्हब्दलि) माघनन्दि, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि हैं। इनका समय क्रमश: २८, २१, १९, ३० और २० वर्ष दिया गया है जिसका योग ११८ वर्ष होता है। इससे पूर्व श्रुतावतारमें विनयधर आदि जिन चार आचार्योंके नाम दिये गये हैं वे यहां नहीं पाये जाते। इस प्रकार इस पट्टावलीके अनुसार भी अंग-परंपराका कुल काल ६२ + १०० + १८३ + १२३ + ९७ +

११८ = ६८३ वर्ष ही आता है जितना कि अन्यत्र बतलाया गया है। परंतु भेद यह है कि अन्यत्र यह काल लोहाचार्य तक ही पूरा कर दिया गया है और यहांपर उसके अन्तर्गत वे पांच आचार्य भी हो जाते हैं जिनकेभीतर हमारे ग्रंथकर्ता धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि भी सम्मिलित हैं।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जो एकादशांगधारियों और उनके पश्चात्के आचार्योंकेसमयोंमें अन्तर पडता है वह क्यों और किसप्रकार ?

कालसंबन्धी अंकोंपर विचार करनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि जहां पर अन्यत्र पांच एकादशांगधारियों और चार एकांगधारियोंका समय अलग अलग २२० और ११८ वर्ष बतलाया गया है वहां इस पट्टावलीमें उनका समय क्रमश: १२३ और ९७ वर्ष बतलाया है अर्थात् २२० वर्षके भीतर नौ ही आचार्य आ जाते हैं और आगे ११८ वर्षमें अन्य पांच आचार्य गिनाये गये हैं जिनके अन्तर्गत धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि भी हैं ।

जहां अनेक क्रमागत व्यक्तियोंका समय समष्टिरुपसे दिया जाता है वहां बहुधा ऐसी भूल हो जाया करती है। किंतु जहां एक एक व्यक्तिका काल निर्दिष्ट किया जाता है वहां ऐसी भूलकी संभावना बहुत कम हो जाती है। हिन्दु पुराणोंमें अनेक स्थानोंपर दो राजवंशोंका काल एक ही वंशकेसाथ दे दिया गया है। स्वयं महावीर तीर्थंकरकेनिर्वाणसे पश्चात्केराजवंशोंका जो समय जैन ग्रंथोमें पाया जाता है उसमें भी इसप्रकारकी एक भूल हुई है, जिसके कारण वीरनिर्वाणके समयकेसंबन्धमें दो मान्यतायें हो गई हैं जिनमें परस्पर ६० वर्षका अन्तर पढ गया है। (देखो आगे वीरनिर्वाण संवत्) । प्रस्तुत परंपरामें इन २२० वर्षोंकेकालमें भी ऐसा ही भ्रम हुआ प्रतीत होता है।

यह भी प्रश्न उठता है कि यदि अर्हव्दलि आदि आचार्य अंगज्ञाताओंकी परंपरामें थे तो उनकेनाम सर्वत्र परंपराओंमें क्यों नहीं रहे, इसका कारण अर्हब्दलिकेव्दारा स्थापित किया गया संघभेद प्रतीत होता है। उनकेपश्चात् प्रत्येक संघ अपनी अपनी परंपरा अलग रखने लगा, जिसमें स्वभावत: संघभेदकेपश्चात्केकेवल उन्हीं आचार्योंकेनाम रक्खे जा सकते थे जो उसी संघकेहो या

जो संघभेदके पूर्वके हो। अत: केवल लोहार्य तककी ही परंपरा सर्वमान्य रही। संभव है कि इसी कारण काल-गणनामें भी वह गडबडी आगई हो, क्योंकि अंगज्ञाताओंकी परंपराको संघ-पक्षपातसे बचानेके लिये लेखकोंका यह प्रयत्न हो सकता है कि अंग-परंपराका काल ६८३ वर्ष ही बना रहे और उसमें अर्हद्वदलि आदि संघ-भेदसे संबन्ध रखनेवाले आचार्य भी न दिखाये जावें।

प्रश्न यह है कि क्या हम इस पट्टावलीको प्रमाण मान सकते हैं, विशेषत: जब की उसकी वार्ता प्रस्तुत ग्रन्थों व श्रुतावतारादि अन्य प्रमाणोंके विरुध्द जाती है ? इस पट्टावलीकी जांच करनेके लिये हमने सिध्दान्तभवन आराको उसकी मूल हस्तलिखित प्रति भेजनेके लिये लिखा, किंतु वहांसे पं. भुजबलिजी शास्त्री सूचित करते हैं कि बहुत खोज करने पर भी उस पट्टावलीकी मूल प्रति मिल नहीं रही है। ऐसी अवस्थामें हमें उसकी जांच मुद्रित पाठ परसे ही करनी पडती है। यह पट्टावली प्राकृतमें है और संभवत: एक प्रतिपरसे बिना कुछ संशोधनके छपाई गई होनेसे उसमें अनेक भाषादि-दोष हैं। इसलिये उस परसे उसकी रचनाके समयके संबन्धमें कुछ कहना अशक्य है। पट्टावलीके ऊपर जो तीन संस्कृत श्लोक हैं उनकी रचना बहुत शिथिल है । तीसरा श्लोक सदोष है। पर उन पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका रचयिता स्वयं पट्टावलीकी रचना नहीं कर रहा, किंतु वह अपनी उस प्रस्तावनाके साथ एक प्राचीन पट्टावलीको प्रस्तुत कर रहा है। पट्टावलीको नन्दि आम्नाय, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ और कुन्दकुन्दान्वयकी कहनेका यह तो तात्पर्य हो ही नहीं सकता कि उसमें उल्लिखित आचार्य उस अन्वयमें कुन्दकुन्दके पश्चात् हुए हैं, किंतु उसका अभिप्राय यही है कि लेखक, उक्त अन्वयका था और ये सब आचार्य उक्त अन्वयमें माने जाते थे। इस पट्टावलीमें जो अंगविच्छेदका क्रम और उसकी कालगणना पाई जाती है वह अन्यत्रकी मान्यताके विरुध्द जाती है। किंतु उससे अकस्मात् अंगलोपसंबन्धी कठिनाई कुछ कम हो जाती है और जो पांच आचार्योंका २२० वर्षका काल असंभव नहीं तो दु:शक्य जंचता है उसका समाधान हो जाता है। पर यदि यह ठीक हो तो कहना पडेगा कि श्रुत-परम्पराके संबन्धमें हरिवंशपुराणके कर्तासे लगाकर श्रुतावतारके कर्ता इन्द्रनन्दितकके सब आचार्योंने धोखा खाया है और उन्हे वे प्रमाण उपलब्ध नहीं थे जो इस पट्टावलीके कर्ताको थे। समयाभावके कारण इस समय इसकी और अधिक जांच पडताल नहीं कर सकते। किंतु साधक बाधक प्रमाणोंका संग्रह करके इसका निर्णय किये जानेकी आवश्यकता है।

यदि यह पट्टावली ठीक प्रमाणित हो जाय तो हमारे आचार्योंका समय वीर निर्वाणके पश्चात् ६२ + १०० + १८३ + १२३ + ९७ + २८ + २१ = ६१४ और ६८३ वर्षकेभीतर पडता है।

धरसेनकृत जोणिपाहुड

धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलिकेसमय पर प्रकाश डालनेवाला एक और प्रमाण है। प्रस्तुत ग्रन्थकी उत्थानिकामें कहा गया है कि जब धरसेनाचार्य के पत्रके उत्तरमें आन्ध्रदेशसे दो साधु, जो पीछे पुष्पदन्त और भूतबलि कहलाये, उनके पास पहुंचे तब धरसेनाचार्यने उनकी परीक्षाके लिये उन्हे कुछ मंन्त्रविद्याएं सिध्द करनेके लिये दी । इससे धरसेनाचार्यकी मन्त्रविद्यामें कुशलता सिध्द होती है। अनेकान्त भाग २ के गत १ जुलाई के अंक ९ में श्रीयुत् पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारका लिखा हुआ योनिप्राभृत ग्रन्थका परिचय प्रकाशित हुआ है, जिससे ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ ८०० श्लोक प्रमाण प्राकृत गाथाओंमें है, उसका विषय मन्त्र-तन्त्रवाद है, तथा वह १५५६ वि. संवत्में लिखी गई बृहट्टिप्पणिका नामकी ग्रन्थ-सूचीके आधारपर से धरसेनद्वारा वीर निर्वाणसे ६०० वर्ष पश्चात् बना हुआ माना गया है १(१ योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम्।) (बृहट्टिपणिका जै. सा. सं. १,२ (परिशिष्ट))। इस ग्रंथकी एक प्रति भांडारकर इंस्टीट्यूट पूनामें है, जिसे देखकर पं. बेचरदासजीने जो नोट्स लिये थे उन्हीं परसे मुख्तारजीने उक्त परिचय लिखा है। इस प्रतिमें ग्रंथका नाम तो योनिप्राभृत ही है किंतु उसके कर्ताका नाम पण्हसवण मुनि पाया जाता है। इन महामुनिने उसे कूष्माण्डिनी महादेवीसे प्राप्त किया था और अपने शिष्य पुष्पदंत और भूतबलिके लिये लिखा था। इन दो नामोंके कथनसे इस ग्रंथका धरसेनकृत होना बहुत संभव जंचता है। प्रज्ञाश्रमणत्व एक ऋध्दिका नाम है और उसकेधारण करनेवाले मुनि प्रज्ञाश्रमण कहलाते थे १ जोणिपाहुडकी इस प्रतिका लेखन-काल संवत् १५८२ है, अर्थात् वह चारसौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। 'जोणिपाहुड' नामक ग्रंथका उल्लेख धवलामें भी आया है। जो इस प्रकार है --

जोणिपाहुडे भणिद-मत-तत-सत्तीओ पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तवो (धवला. अ. प्रति. पत्र ११९८)

इससे स्पष्ट है कि योनिप्राभृत नामका मंत्रशास्त्रसंबन्धी कोई अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ अवश्य है। उपर्युक्त अवस्थामें आचार्य धरसेननिर्मित योनिप्राभृत ग्रंथके होनेमें अविश्वासका कोई कारण नहीं है। तथा बृहट्टिप्पणिकामें जो उसका रचनाकाल वीर निर्वाणसे ६०० वर्ष पश्चात् सूचित किया है वह भी गलत सिध्द नहीं होता। अभी अभी अनेकान्त (वर्ष २, किरण १२ पृ. ६६६) में श्रीमान् पं. नाथूरामजी प्रेमीका 'योनिप्राभृत और प्रयोगमाला' शीर्षक लेख छपा है, जिसमें उन्होंने प्रमाण देकर बतलाया है कि भंडाकरकर इंस्टीट्यूटवाला 'योनिप्राभृत' और उसीके साथ गुंथा हुआ 'जगत्सुंदरी योगमाला' संभवत: हरिषेणकृत हैं, किंन्तु हरिषेणके समयमें एक और प्राचीन योनिप्राभृत विद्यमान था । बृहट्टिप्पणिकाकी प्रामाणिकताके विषयमें प्रेमजीने कहा है कि 'वह सूची एक श्वेतांबर विव्दान्ने प्रत्येक ग्रंथ देखकर तैयार की थी और अभी तक वह बहुत ही प्रामाणिक समझी जाती है'। नन्दिसंघकी प्राकृत पट्टावलीके अनुसार धरसेनका काल वीर निर्वाणसे ६२ + १०० + १८३ + १२३ + ९७ + २८ + २१ = ६१४ वर्ष पश्चात् पडता है, अत: अपने पट्टकालसे १४ वर्ष पूर्व उन्होंने यह ग्रंथ रचा होगा । इस समीकरणसे प्राकृत पट्टावली अैर बृहट्टिप्पणिकाके संकेत, इन दोनोंकी प्रामाणिकता सिध्द होती है, क्योंकि, ये दोनां एक दूसरेसे स्वतंत्र आधारपर लिखे हुए प्रतीत होते हैं।

१. धवलामें पण्हसमणोंको नमस्कार किया है और अन्य ऋध्दियोंके साथ प्रज्ञाश्रमणत्व ऋध्दिका विवरण दिया है। यथा --

णमो पण्हसमणाणं ।।१८।। औत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा प्रज्ञा। एदेसु पण्हसमणेसु केसिं गहणं। चदुण्ह पि गहणं। प्रज्ञा एव श्रवण येषां ते प्रज्ञाश्रवणा:

धवला. अ. प्रति ६८४

जयधवलाकी प्रशस्तिमें कहा गया है कि वीरसेनके ज्ञानके प्रकाशको देखकर विव्दान् उन्हें श्रुतकेवली और प्रज्ञाश्रमण कहते थे। यथा--

यमाहु: प्रस्फुरब्दोधदिधितिप्रसरोदयम् ।
श्रुतकेवालेन: प्राज्ञा: प्रज्ञाश्रवणसत्तमम् ।। २२।।

तिलोयपण्णत्ति गाथा ७० में कहा गया है कि प्रज्ञाश्रमणोंमें अन्तिम मुनि 'वज्रयश' नामके हुए। यथा-पण्हसमणेसु चरिमो वइरजसो णाम। (अनेकान्त, २, १२ पृ. ६६८)

कुन्दकुन्दकृत परिकर्म

षट्खण्डागमके रचनाकाल पर कुछ प्रकाश कुन्दकुन्दाचार्यके संबन्धसे भी पडता है। इन्द्रनन्दिने श्रुतावतारमें कहा है कि जब कर्मप्राभृत और कषायप्राभृत दोनों पुस्तकारुढ हो चुके तब कोण्डकुन्दपुरमें पद्मनन्दि मुनिने, जिन्हें सिध्दान्तका ज्ञान गुरु-परिपाटीसे मिला था, उन छह खण्डोंमेंसे प्रथम तीन खण्डोंपर परिकर्म नामक बारह हजार श्लोक प्रमाण टीका-ग्रंथ रचा। पद्मनन्दि कुन्दकुन्दाचार्यका भी नाम था और श्रुतावतारमें कोण्डकुन्दपुरका उल्लेख आनेसे इसमें संदेह नहीं रहता कि यहां उन्हींसे अभिप्राय है। यद्यपि प्रो. उपाध्ये कुन्दकुन्दके ऐसे किसी ग्रन्थकी रचनाकी बातको प्रामाणिक नहीं स्वीकार नहीं करते, क्योंकि, उन्हे धवला अैर जयधवलामें इसका कोई संकेत नहीं मिला। किंतु कुन्दकुन्दके सिध्दान्त ग्रंथोंपर टीका बनानेकी बात सर्वथा निर्मूल नहीं कही जा सकती, क्योंकि जैसा कि हम अन्यत्र बता रहे हैं, परिकर्म नामक ग्रन्थके उल्लेख धवला और जयधवलामें अनेक जगह पाये जाते हैं।

प्रो. उपाध्येने कुन्दकुन्दके लिये ईस्वीका प्रारम्भ काल, लगभग प्रथम दो शताब्दियोंके भीतरका समय, अनुमान किया है उससे भी षट्खण्डागमकी रचनाका समय उपरोक्त ठीक जंचता है।

भौगोलिक उल्लेख

धरसेनाचार्य गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें रहते थे। यह स्थान काठियावाडके अन्तर्गत है। यह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथकी निर्वाणभूमि होनेसे जैनियोंके लिये बहुत प्राचीन कालसे अबतक महत्वपूर्ण है। मौर्य राजाओंके समयसे लगाकर गुप्त काल अर्थात ४ थी, ५ वी शताब्दितक इसका भारी महत्व रहा जैसा कि यहांपर एक ही चट्टान पर पाये गये अशोक मौर्य, रुद्रदामन और गुप्तवंशी स्कन्धगुप्तके समयके लेखोंसे पाया जाता है।

धरसेनाचार्यने 'महिमा' में सम्मिलित संघको पत्र भेजा था जिससे महिमा किसी नगर या स्थान का नाम ज्ञात होता है, जो कि आन्ध्र देशके अन्तर्गत वेणाक नदीके तीरपर था। वेण्या नामकी एक नदी बम्बई प्रान्तके सातारा जिलेमें है और उसी जिलेमें महिमानगढ नामका एक गांव भी है, जो हमारी महिमा नगरी हो सकता है। इससे अनुमानत: यहीं सातारा जिलेमें वह जैन मुनियोंका सम्मेलन हुआ था। यदि यह अनुमान ठीक हो तो मानना पडेगा कि सातारा जिलेका भाग उस समय आन्ध्र देशके अन्तर्गत था। आन्ध्रोंका राज्य पुराणों और शिलादि लेखोंपरसे ईस्वी पूर्व २३२ से ई. सन् २२५ तक पाया जाता है। इसके पश्चात् कमसे कम इस भागपर आन्ध्रोंका अधिकार नहीं रहा। अतएव इस देशको आन्ध्र विषयान्तर्गत लेना इसी समयके भीतर माना जा सकता है। गिरिनगसे लौटते हुए पुष्पदंत और भूतबलिने जिस अंकुलेश्वर स्थानमें वर्षाकाल व्यतीत किया था वह निस्सन्देह गुजरातमें भडोंच जिलेका प्रसिध्द नगर अंकलेश्वर ही होना चाहिये। वहांसे पुष्पदन्त जिस बनवास देशको गये वह उत्तर कर्नाटकका ही प्राचीन नाम है जो तुंगभद्रा और वरदा नदियोंके बीच बसा हुआ है। प्राचीन कालमें यहां कदम्ब वंशका राज्य था। जहां इसकी राजधानी 'वनवासि' थी वहां अब भी उस नामका एक ग्राम विद्यमान है। तथा भूतबलि जिस द्रमिल देशको गये वह दक्षिण भारतका वह भाग है जो मद्राससे सेरिंगपट्टम और कामोरिन तक फैला हुआ है और जिसकी प्राचीन राजधानी कांचीपुरी थी। प्रस्तुत ग्रंथकी रचना-संबन्धी इन भौगोलिक सीमाओंसे स्पष्ट जाना जाता है कि उस प्राचीन कालमें काठियावाडसे लगाकर देशके दक्षिणतम भाग तक जैन मुनियोंका प्रचुरतासे विहार होता था और उनके बीच पारस्परिक धार्मिक और साहित्यिक आदान-प्रदान सुचारुरुपसे चलता था। यह परिस्थिती विक्रमकी दूसरी शताब्दितक के समयका संकेत करती है।